

थारू जनजाति

दुनिया की अधिकांश जनजातियां वनों पर निर्भर और आखेटक संग्रहक रही हैं और कृषि पर निर्भर न होने के कारण उनके जीवन को स्थायित्व नहीं मिला। लेकिन थारू जनजाति कृषि पर आधारित होने के कारण इनके जीवन को स्थायित्व मिला है। इसीलिए थारूओं की आबादी फलती-फूलती रही है। वे आज उत्तराखण्ड के तराई से लेकर उत्तर-प्रदेश के पीलीभीत तक फैले हुए हैं। उनकी विडम्बना यह है कि तराई की जो उपजाऊ जमीन उन्हें धरती पुत्र बनाती थी, वह जमीन खिसक कर बाहर से आकर बसे लोगों के पास जा रही है। मानव विज्ञानी उन्हें मंगोलयन तथा कोई उन्हें किरात वंशीय मानता है। जबकि थारू स्वयं को राजस्थान और राणा प्रताप के वंशज मानते हैं।

● भूमि से वंचित होते भूमि पुत्र थारू:

थारू उत्तराखण्ड में निवास करने वाली पांच जनजातियों में से एक है। कृषि आधारित थारूओं की बसागत उत्तराखण्ड के तराई से लेकर बिहार तक तथा उत्तर में नेपाल तक फैली हुई है। ये उत्तर प्रदेश में लखीमपुर, खीरी, बहराइच, गोण्डा एवं गोरखपुर जिलों में रहते हैं। उत्तराखण्ड में इनकी आबादी मुख्यतः नैनीताल जिले की सितारगंज तहसील तथा ऊधमसिंहनगर की खटीमा तहसील में ही केन्द्रित है। सन् 1951 में सर्वप्रथम 214 जनजातियों को अनुसूचित जनजातियों का दर्जा दिया गया तो थारू उस सूची में नहीं आ सके। इसके बाद 1967 में (द कन्स्टिट्यूशन आर्डर 1967 : 78 के तहत) उत्तर-प्रदेश के भोटिया,

बोक्सा, जौनसारी और राजी के साथ ही थारू को भी अनुसूचित जनजाति का दर्जा दे दिया गया। थारू संस्कृति प्रकृति के अनुरूप ढली हुई है। उनके आवास, भोजन, कपड़ा, कला, धर्म, अर्थव्यवस्था और जीवन के कई अन्य भाग प्रकृति पर आधारित हैं और पारिस्थितिकी संतुलन के अनुकूल हैं।

उपलब्ध रिकार्ड के अनुसार 20वीं सदी के अंत तक नेपाल के थारू जाति के लोगों की संख्या लगभग 7 लाख, 20 हजार और भारत में लगभग 10 हजार थी। प्रारम्भ में थारू तराई में ही रहते थे तथा वहीं से इसका प्रचार हुआ। इसलिए इस क्षेत्र को "थारूआट" भी कहते थे। कुछ सिद्धांतों ने इन्हें "थडुवा" तथा इनके निवास स्थान को "थडुवाट" भी कहा है। इन दोनों तहसीलों में थारूओं की जनसंख्या 1981 की जनगणना के अनुसार 53,406 थी जो 1991 में बढ़कर 66,842 हो गई। उत्तर-प्रदेश के विभाजन से पूर्व उत्तराखण्ड सहित प्रदेश में थारूओं की जनसंख्या 1981 की जनगणना के अनुसार 88,854 तथा 1991 की जनगणना के अनुसार 1,11,207 थी। स्पष्ट है कि विभाजन के बाद थारूओं की आबादी का बड़ा भाग उत्तराखण्ड में आ गया। नैनीताल जिले में ही गदरपुर तथा पौड़ी जिले के लालढांग क्षेत्र में भी थारूओं की बस्तियां हैं। खटीमा तथा सितारगंज विकास खण्डों में कुल गांवों की संख्या क्रमशः 120 तथा 117 है जिनमें थारूओं के गांव 74 और 64 हैं। खटीमा में इनकी आबादी 1991 की जनगणना के अनुसार 40,645 तथा सितारगंज में 26,188 थी। उस समय दोनों विकास खण्डों में थारूओं के 13,368 परिवार रहते थे। "थारूआट" का मतलब तराई का गहरा एवं दलदला क्षेत्र होता है। इसमें भूमिगत जल अधिक है। यहां के नदी नालों में प्रायः बाढ़ आती रहती है। यह क्षेत्र पूर्व में एक घना जंगल जानवरों से लेकर जानलेवा बीमारी मलेरिया को पैदा करने वाले मच्छरों की भरमार रही है। यहां एक जमाने में मलेरिया बहुत होता था, इसलिए यह मलेरिया जोन घोषित था। क्षेत्र में प्राचीन थारू जाति के लोगों के अलावा कोई बाहरी व्यक्ति बसने की हिम्मत नहीं जुटा पाता था। मच्छरों के बीच अपना अस्तित्व बचाने में कामयाब थारूओं को 'मलेरिया प्रूफ'

मावन कहा जाता था। अंग्रेज अफसर तो इस क्षेत्र में जाने से बहुत घबराते थे। आज यद्यपि सरकार ने मलेरिया उन्मूलन अभियान के बाद इस बीमारी को समाप्त घोषित कर दिया, मगर तराई के निवासियों का मानना है कि मलेरिया अब वायरल के रूप में प्रकट हो गया है और लोग इस वायरस से काफी पीड़ित रहते हैं। गजेटियर ऑफ हिमालयन डिस्ट्रिक्ट(1882) में एटकिन्सन ने इस क्षेत्र को "मृत्यु भूमि" की संज्ञा भी दी है।

● ऐतिहासिक पृष्ठभूमि:

थारु शब्द की उत्पत्ति के बारे में विद्वानों में मतैक्यता नहीं है। जनगणना रिपोर्ट (1867 : 68) में थारु शब्द की उत्पत्ति "तरुवा" शब्द से मानी गयी है, जिसका अर्थ भीगना होता है। तराई क्षेत्र में होने वाली अतिवृष्टि तथा दलदली जमीन से इस शब्द का ताल्लुक माना जा सकता है। नेसफील्ड (1885 : 115) ने थारु शब्द की उत्पत्ति थार शब्द में मानी है। उस समय थार शब्द का अर्थ स्थानीय बोली में "जंगलवासी" से लगाया जाता था। क्रुक ने थारु शब्द की उत्पत्ति दारु से मानी है, क्योंकि यह जनजातीय समूह शराब का बहुत आदी होता था। नावेल्लस ने गोस्पेल इन गौण्डा में इन्हें थरुवा कहा है, जिसका मतबल पैदल चलने वाला होता है। यही नहीं नॉर्थ वेस्टर्न प्रोविन्सेज (1881 : 354) में इसके लिये थथराना शब्द का प्रयोग किया गया है। इस बारे में कहा जाता है कि जब राजपूत और मुगलों में युद्ध हुए तो राजपूत राजा मारे गये और उनकी रानियां अपने स्वाभिमान और सतीत्व की रक्षा के लिये अपने सुरक्षाकर्मियों के साथ भाग कर तराई के जंगलों में आ गयी। इन्हीं रानियों और सामन्तों की पत्नियों ने इन सुरक्षाकर्मियों से विवाह सम्बन्ध स्थापित कर लिये। एक मत यह भी है कि तराई का राजा जब बाहरी आक्रमणकारियों से पराजित हो कर मारा गया तो उनकी रानियां आत्मरक्षा के लिये अपने साईसों के साथ जंगलों में पलायन कर गयी। बाद में उन्होंने उन्हीं कर्मचारियों के साथ विवाह

सम्बन्ध स्थापित कर लिये। अवध गजेटियर के अनुसार थारू का शाब्दिक अर्थ ठहरे हैं, अर्थात् जो लोग तराई के वनों में आकर ठहर गये। नोल्स के अनुसार— थारू लोगों में अपहरण विवाह की प्रथा है। पहाड़ी भाषा में थरूवा का अर्थ पैडलर है, अतः इन्हें थारू कहा जाने लगा। कुल मिला कर थारूओं के मूल के बारे में मावनशास्त्रियों में मतैक्यता तो नहीं है, फिर भी उनकी राजपूत या क्षत्रिय उत्पत्ति की धारणा में अधिक बल नजर आता है।

अधिकांश मानव विज्ञानियों ने थारूओं को मंगालियन नस्ल का तथा ऐतिहासिक किरातों का वंशज माना है। मानव विज्ञान सर्वेक्षण विभाग के मानव विज्ञानियों ने मजूमदार (1961) तथा सी० एफ० सिंह (1960 : 17.20) आदि विद्वानों के शोध कार्यों का हवाला देते हुए माना है कि लद्दाख के भोटा, चम्बा के लाहुली, स्पीति के सिप्तियाल, कुल्लू के मनाली, किन्नौर के किन्नर, नेलंग के जाड़, नीति माणा के मारछा—तोलछा, मिलम के जोहारी, अस्कोट (पिथौरागढ़) के राजी, पश्चिमी नेपाल के मगर तथा गुरुंग, केन्द्रीय नेपाल के तमांग, लिम्बू—याखा एवं नेपाल घाटी के नेवाड़, पूर्वी नेपाल के राजी, सिक्किम के लेप्चा, असम के नागा एवं अन्य मोन्पा जनजातियां एवं वर्मा, कम्बोडिया आदि के निवासी माने खामेर या किरात परिवार के सदस्य हैं। रिजले ने थारू जनजाति को एक मिश्रित प्रजातीय समूह बताया है और शारीरिक विशेषताओं के आधार पर मंगोल प्रजाति के निकट माना है। नेपाली मानव विज्ञानी प्रो० डोर बहादुर बिष्ट, बलराम घत्री आदि ने थारूओं को भगवान बुद्ध के वंशज बताया है। उनका मानना है कि कपिलवस्तु, लुम्बिनी के राजा सुद्धोधन एक थारू शासक ही थे जो कि राजपाठ छोड़ने के बाद ज्ञान प्राप्ति से भगवान बुद्ध कहलाए। ये नेपाल को इनका मूल स्थान मानते हैं।

थारू जनजाति के लोग स्वयं को भारतीय संस्कृति के स्वाभिमान के प्रतीक महाराणा प्रताप के सैनिक मानते हैं। उनका मानना है कि थारू जनजातीय समुदाय के लोग पांच शताब्दी पूर्व गंगा की इस तलहटी में आकर उस समय बसे थे जब मुगलों ने राजस्थान के

राजपूताना राज्यों पर आक्रमण किया। तब महाराणा प्रताप ने ही मुगलों से लोहा लिया था। उस समय जयपुर के राजा मानसिंह ने मुगल बादशाह अकबर से संधि कर ली। यही नहीं महाराणा प्रताप का छोटा भाई भी मुगलों से जा मिला। राजा मानसिंह मुगलों के सेनापति के तौर पर महाराणा प्रताप से 1576 में हल्दीघाटी के बीच भीषण मुकाबला हुआ था। इस संग्राम में महाराणा की समस्त सेना मारी गयी। सेना के मारे जाने के पश्चात् महाराणा को स्थान – स्थान पर भटकना पड़ा। थारुओं का मानना है कि उसी समय मुगलों से त्रस्त राजपूताना राज्यों के 12 राज परिवार हिमालय के तराई क्षेत्र में आकर बस गए और वही आयुद्धजीवी राजपूत आज के थारुओं के आदि पुरुष बने। थारु जनजाति की महिलाओं का पहनावा, रहन-सहन और उनकी वेश-भूषा राजपूत रानियों के समान होती है। थारु स्त्रियों रानियों के समान ही गहने पहनती है। थारु पुरुषों की भी वेश-भूषा राजपूत सामन्तों के समान ही होती है।

खटीमा स्थित थारु राणा परिषद् के अध्यक्ष एंव सन् 2002 से 2011 तक खटीमा से कांग्रेस विधायक रहे गोपाल सिंह राणा के अनुसार एक थारु चित्तौड़गढ़ राजस्थान के सिसौदिया वंश के राणा राजपूत है तथा लगभग 700 वर्ष पूर्व 1303 ईस्वी के आसपास अलाउद्दीन खिलजी द्वारा चित्तौड़ के राजपूतों पर अत्याचार के दौरान अपनी जान तथा बहू – बेटियों की इज्जत बचाने के लिए वहां से भाग कर हिमालय की तलहटी तराई में बस गए थे। गोपाल सिंह का दावा है कि तराई में रहने के कारण लोगों ने थारुओं को शुरू में तारु कहा और बाद में यह नाम बिगड़ कर थारु हो गया। श्री राणा का मानना है कि 12 राणा राजपूत परिवार सबसे पहले कैलाश (बंधौर) नदी के किनारे बसे, इसीलिए उस स्थान का नाम बारहराणा पड़ा। आज इस स्थान पर सम्पूर्णानन्द खुली जेल कैम्प है। थारुओं ने अपने वंश सिसौदिया के नाम से सिसौना बसाया। कालान्तर में अल्लाउद्दीन खिलजी के हाथों मारे जाने वाले चित्तौड़ नरेश राणा रतनसिंह के नाम से रतनपुर के बसने के साथ ही थारु राणा वीरसिंह ने विरवा, पूरनसिंह ने पूरनपुर

तथा पूरनगढ़ और प्रतापसिंह ने प्रतापपुर बसाया। गोपाल सिंह राणा के अनुसार राणा थारुओं ने वन विभाग के आज के कोली रेंज में एक किला भी बनाया था जो कि अब नष्ट हो गया है।

● शारीरिक गठन:

थारुओं को नोल्स ने द्रविड़ प्रजाति के अंतर्गत माना है और कहा है कि दक्षिण की ओर से तराई में आकर ये लोग बस गये। ओल्डहम की मान्यता है कि यह भारतीय जाति से ही सम्बन्धित रहे हैं। नेस्फील्ड के मतानुसार थारु अन्य भारतीय लोगों से मिलते-जुलते हैं, भले ही उनमें अंतर्विवाह के फलस्वरूप मिश्रित लक्षण पाये जाते हैं। मजूमदार का मत है कि इनकी शारीरिक रचना मंगोलॉयड प्रजाति से मिलती-जुलती है, जैसे— तिरछे नेत्र, गाल की हड्डियाँ उभरी हुई, रंग भूरा-पीला, शरीर और चेहरे पर बहुत कम और सीधे-बाल, मध्यम और सीधे आकार की नाक आदि। जबकि अन्य शारीरिक लक्षणों में ये नेपालियों से मिलते-जुलते हैं, क्योंकि कई शताब्दियों से इनके वैवाहिक सम्बन्ध नेपाल के दक्षिणी क्षेत्र में बसे वहाँ के थारुओं से रहे हैं। थारु स्त्रियों का रंग अधिक साफ होता है। इनका चेहरा कुछ लम्बाकार अथवा गोल, स्तन गोल, उठे हुए एवं नुकीले, पिंडलियाँ अधिक विकसित और होंठ पतले होते हैं, किन्तु सिर कुछ लम्बा होता है और आँखें काले रंग की होती हैं। वास्तविकता यह है कि थारुओं में मंगोलॉयड और भारतीय जातियाँ दोनों के ही मिश्रित शारीरिक लक्षण दृष्टिगोचर होते हैं। सांस्कृतिक सम्पर्कों के फलस्वरूप थारु जाति के शारीरिक लक्षणों में पर्याप्त परिवर्तन हुए हैं। यद्यपि थारुओं का औसत कद आज भी छोटा ही होता है। जबकि कुछ विद्वान इन्हें भारत-नेपाल के आदिम निवासी सिद्ध करते हैं, क्योंकि इनकी बोली हिन्दी और नेपाली से प्रभावित है। लेकिन इनकी भाषा पर कुछ विद्वान राजस्थानी भाषा का भी व्यापक प्रभाव देखते हैं।

● आजीविका:

आर्थिक दृष्टि से थारू एक आत्मनिर्भर जनजाति है, जो अपनी आवश्यकताओं से सम्बन्धित सभी वस्तुओं का स्वयं ही उत्पादन करते हैं। थारूओं की मुख्य आजीविका खेती ही है तथा जमीन से जुड़ने के कारण यह स्थिर जनजातियों में से एक है। यह लगभग सभी तरह के प्रचलित खाद्यान्नों की फसलें उगाते हैं। सिंचाई सुविधाओं की अपर्याप्तता के बावजूद इनकी फसलें अच्छी होती है। खेती के साथ ही वह अपने भोजन के लिए मत्स्य तथा वन्य जीवों का आखेट भी करते हैं। ये लोग स्वयं ही बढ़ई भी हैं तो सुनार भी। वे स्वयं ही लुहार भी हैं तो कुम्हार भी। वे अपने रहने के लिये मकान स्वयं बनाते हैं। कृषि उपकरण भी वे स्वयं ही बनाते हैं। उन्हें मवेशियों, सुअर तथा मुर्गी पालन में विशेषज्ञता हासिल है। इसके अलावा कारपेण्ट्री, भवन चिनाई, बुनकर चटाई बनाना, बेंत की चारपाई बनाना तथा टोकरी बुनने के हस्तशिल्प ने उन्हें आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर तो बनाया है, परन्तु इस हस्तशिल्प को अभी तक व्यावसायिक रूप नहीं दिया जा सका। सामाजिक परम्पराओं के चलते वे इन वस्तुओं को केवल अपनी जरूरत की पूर्ति के लिये बनाते हैं। अपनी कला को बेचना वे आज भी सामाजिक मान्यताओं का उल्लंघन मानते हैं।

थारू महिलाएं टोकरी, चटाई, दरी और हाथ के पंखे बनाने में सिद्धहस्त होती हैं। यह एक खास किस्म की मिट्टी में भूसा मिलाकर बड़े-बड़े तथा विभिन्न आकार-प्रकार के कोठार बनाने में माहिर होती हैं। इन कोठारों को कुठिया या कुठला भी कहते हैं। यह काफी मजबूत और टिकाऊ होते हैं तथा इनमें आग लगने का खतरा भी नहीं होता है। यह ढांचे घरों में पार्टिशन का भी काम करते हैं। इसी सामग्री से ये महिलाएं आग सेंकने के लिए करोड़ तथा विभिन्न आकार-प्रकार के धूम्र रहित चूल्हे भी बनाती हैं। इन चूल्हों में भूसा ठूसा जाता है, जो कि बिना धुएं के आम जलाऊ लकड़ी से अधिक आंच देता है। ये चूल्हे बड़े से बड़े संयुक्त परिवार के काम आ जाते हैं।

थारुओं का खेती के अलावा मछली का शिकार दूसरा मुख्य कार्य है। इन्हें चावल और मछली बहुत पसन्द है। गांव के सभी स्त्री-पुरुष 20 या 30 क समूहों में दूर बहती हुई शारदा नदी या नहर में जाल या छपरियां (बेंत की बनी मछली पकड़ने की टोकरी) लेकर आते हैं और शाम तक मछली मारने के बाद लौटते हैं। रोचक बात तो यह है कि पूर्व में स्त्री-पुरुष मछली पकड़ने अलग-अलग जाते थे तथा प्रायः स्त्रियां पुरुषों की पकड़ी हुई और यहां तक कि उनकी छोड़ी हुई मछली नहीं खाती थी। यह भी गौरतलब है कि ये केवल उतनी मछलियां पकड़ते हैं जितनी कि जरूरत हो, क्योंकि ये मछलियां बेचते नहीं हैं। जबकि नानकमत्ता जैसे बांधों या जलाशयों में मछली पकड़ने के सरकारी ठेके होते हैं। जिनसे बाहरी ठेकेदार माला-माल हो रहे हैं।

अधिकतर थारुओं को कुशल एवं अपर्याप्त कृषि से सालभर के लिए खाद्यान्न प्राप्त नहीं होता। ये स्वभाव से भोले और सुस्त होते हैं। अभी तक इनके फसल बोनो से लेकर उपज को बाजार में बेचने तक के सभी ढंग परंपरागत हैं। हालांकि जागरूकता अब बढ़ रही है, फिर भी उनका ध्यान अब तक नकदी फसलों की ओर नहीं आया। अधिकतर थारु ऋणों में डुबे हुए हैं और अपनी ईमानदारी के कारण थारु सबसे पहले ब्याज का भुगतान और निश्चित शर्तों का पालन करते हैं। चाहे उन्हें कितना भी नुकसान क्यों न उठाना पड़े। पहले थारु लोग गैर थारुओं को अपना श्रम नहीं बेचते थे। थारु "टांगिया" से भी आय प्राप्त करते हैं। इस व्यवस्था में थारु श्रमिकों और वन विभाग के बीच करार होता है। करार के अनुसार थारु श्रमिक वन विभाग द्वारा लगाये गए वृक्षों (पौधारोपण) की रक्षा तथा देखभाल करते हैं और बदले में 3-4 साल तक उस वन भूमि पर फसल उगाने की अनुमति मिलती है। तब तक यहां लग पौधे वृक्षों की शकल लेने लगते हैं। थारु फसल बंटवाई तथा अनुबंध पर भी खेती करते हैं।

शिक्षा के प्रसार के साथ ही थारु युवाओं को सरकारी तथा निजी क्षेत्र में रोजगार मिलने लगा है फिर भी सरकारी नौकरियों और व्यवसाय के मामले में थारु लोग भोटिया तथा जौनसारी जनजातियों से

काफी पीछे है। खटीमा नगर थारुओं की जमीन पर बसा है, मगर उसमें व्यवसाय करने वाले 90 प्रतिशत से अधिक लोग गैर थारु हैं। आर्थिक सामाजिक और राजनीतिक उत्थान के मामले में थारु जनजाति को भोटिया और जौनसारी जनजातियों के बाद तीसरे नम्बर पर रखा जा सकता है। थारु समाज में श्रमिक और भूमिधर में अन्तर दिखाई नहीं देता। श्रम का भुगतान नकद में नहीं बल्कि सामग्री में होता है। इसीलिए मानव विज्ञानी तथा नियोजनकर्ता इनमें बंधुवा मजदूरी चिन्हित नहीं कर पाये।

● सामाजिक पद्धति:

थारुओं में पितृसत्तात्मक, पितृवंशीय और पितृस्थानीय परंपरा पाई जाती है। लेकिन समान में महिलाओं का महत्व और भूमिका पुरुषों से कम नहीं होती। इस समुदाय की महिलाएं अधिक सम्मानित एवं विशेषाधिकार प्राप्त होती हैं। वे सामाजिक, आर्थिक और धार्मिक आदि सभी क्षेत्रों में निर्णायक भूमिका का निर्वाह करती हैं। ये महिलाएं स्वयं को चित्तौड़ की रानी पद्मावती की वंशज मानती हैं। पद्मावती के अतीत सौन्दर्य के कारण ही अल्लाउद्दीन खिलजी की नीयत डोली थी तथा उससे युद्ध में राजा रतनसिंह राणा एवं सेनापति के मारे जाने के बाद पद्मावती सहित कई क्षत्रणियों ने जौहर किया था।

चूंकि वे स्वयं को हिन्दू ही मानते हैं, इसलिए उनके बाकी रीति-रिवाज मुख्यधारा के हिन्दुओं से मिलते-जुलते हैं। परिवार में बड़े बूढ़ों के प्रति श्रद्धाभाव, आज्ञाकारिता और उनकी भावनाओं के अनुरूप कार्य करने की परम्परागत बाध्यता के कारण ये कमाऊ व्यक्ति अपनी क्षमतानुसार उत्पादक और उपर्जन सम्बन्धी कार्य करते हैं। ये एकाकी परिवार बसाना सामाजिक परम्पराओं और नैतिकता के खिलाफ मानते हैं। हालांकि बाहरी हवा लगने के कारण थारुओं की अपनी समृद्ध संस्कृति को भी खतरा उत्पन्न हो गया है और वे पुराने रीति-रिवाजों को कमतर मानकर उन्हें तेजी से छोड़ रहे हैं। तथाकथित आधुनिकता घुन की तरह

उनकी सांस्कृतिक पहचान को मिटाने का काम कर रही है। सबसे बड़ा खतरा आधुनिकता की हवा से संयुक्त परिवारों की सदस्य संख्या कमी 100 को पार कर जाती थी। नेपाल में थारूओं के संयुक्त परिवारों में 500 तक सदस्य गिने गए हैं। इतने वह खून के रिश्तों की एकता का प्रतीक था। इतने बड़े परिवारों के हितों तथा उनकी जमीन पर अतिक्रमण की संभावना कम थी। यह एकता परिवार और गांव से लेकर राज्यों की सीमाओं से बाहर तक कायम रहती है।

टर्नर (1931) के मत से थारू समाज दो अर्द्धांशों में बंटा था, जिसमें से प्रत्येक क छह गोत्र होते थे। दोनों अर्द्धांशों में पहले तो ऊँचे अर्द्धांशों में नीचे अर्द्धांश की कन्या का विवाह संभव था परन्तु धीरे-धीरे दोनों अर्द्धांश अंतर्विवाही हो गए। "काज" और "डोला" अर्थात् वधूमूल्य और कन्या अपहरण पद्धति से विवाह के स्थान पर अब थारूओं में भी सांस्कृतिक विवाह होने लगे हैं। विधवा द्वारा देवर से या अन्य अविवाहित पुरुष से विवाह इनके समाज में मान्य है। अपने गोत्र में भी यह विवाह कर लेते हैं। थारू एक अन्तर्विवाही समुदाय है जो कि सामान्यतः एक विवाही नियमों का पालन करता है। हालांकि अब शेष समाज की तरह थारूओं में भी विवाह के तरीके प्रचलित होने लगे हैं, लेकिन कभी वहां विवाह की प्रथा अलग थी। अब भी दूरदराज के थारू गांवों में अपने ही ढंग से विवाह होते हैं। इनमें वर पक्ष की ओर से किसी मध्यस्त (मस्पतियां) द्वारा विवाह की बातचीत चलती है। पहले इनमें दोनों पक्षों में लड़कियों के अदला-बदली की प्रथा थी, क्योंकि वर पक्ष को दुल्हन के पिता के "टेक" के रूप में दुल्हन मूल्य अदा करना पड़ता था। अब इनमें "तीन टिकटी" प्रथा जोर पकड़ रही है। इस व्यवस्था के तहत तीसरे परिवार से दुल्हन उपलब्ध कराई जाती है। थारूओं में बिरादरी से बाहर विवाह संबंध जोड़ना सामाजिक अपराध माना जाता है। परन्तु नजदीकी खून के रिश्तों जैसे चचेरे, ममेरे और फुफेरे भाई बहनों में विवाह संबंध वर्जित है। करीबी नातेदारों में यौन संबंध घोर अपराध माना जाता है। एक थारू पुरुष के सगे छोटे भाई की पत्नी (अनुज वधू) तथा पति के बड़े भाई (जेठ) के बीच मजाक वर्जित है तथा दूरी रखी जाती है। इसी

प्रकार एक पुरुष एवं उसकी पत्नी की बड़ी बहन तथा स्त्री के पति की छोटी बहन के मध्य भी रिश्तों की दीवार होती है। अनुज वधू अपने जेठ से सीधे बात नहीं कर सकती। उसे परिवार के अन्य सदस्यों के माध्यम से संवाद करना पड़ता है।

एक पुरुष तथा उसकी पत्नी के छोटे भाई एवं बहन (साला – साली) से मजाक का रिश्ता होता है। इसकी प्रकार स्त्री की छोटी बहन के पति तथा छोटे भाई-बहनों में मजाक चलता है। इनमें विधवा का देवर से तथा विधुर जीजा का साली से विवाह का रिवाज है। थारुओं में बहुपति प्रथा कभी नहीं रही है। इनमें दुल्हन मूल्य एवं महिलाओं की संख्या कम होने के कारण एक पति की एक पत्नी का रिवाज है। परन्तु कुछ मानव शास्त्रियों को एक से अधिक पत्नियों के उदाहरण भी मिले हैं। इनमें विधवा विवाह वर्जित नहीं है, लेकिन विधुरों को पुनः विवाह करने में कठिनाई आती है, क्योंकि उसे दुल्हन के पिता के लिए रकम जुटानी पड़ती है। मानव विज्ञानियों के अनुसार अन्य समाजों की तरह थारुओं में दुल्हन और दूल्हे की उम्र का ध्यान नहीं रखा जाता था, इसीलिए समाज में उम्र के भारी अन्तर वाले वैवाहिक जोड़े देखे जा सकते हैं। वहाँ भी चोरी-छिपे विवाहेत्तर संबंध अन्य समाजों की तरह चलते हैं, परन्तु गर्भधारण पर मामला गंभीर बन जाता है। थारुओं में वैवाहिक संबंध विच्छेद की भी इजाजत है और तलाक के बाद स्त्री अपनी पसंद के पुरुष से विवाह भी कर सकती है, लेकिन इसके लिए उस नये पति को बिरादरी की पंचायत के निर्देशानुसार पूर्व पति को उसके द्वारा स्त्री के पिता को अदा की गई "टेक" की रकम अदा करने के साथ उतनी ही रकम स्त्री के पिता को नई टेक के रूप में अदा करनी होती है। पूर्व पति द्वारा पत्नी को दिए गए जेवर भी लौटा दिए जाते हैं। इस व्यवस्था के कारण परिवारों में स्थिरता रहती है तथा कोई भी अपनी पत्नी का जब चाहे परित्याग नहीं कर पाता है। इनमें विवाहिता की निशानी चूड़ियाँ तथा पाँव की उंगलियों में मुद्रिका होती है।

थारुओं में विवाह फागुन के शुक्ल पक्ष में होते हैं, परन्तु कभी-कभी किसी का बैसाख के शुक्ल पक्ष में भी विवाह हो जाता है।

इसे "लठमखा" भोज कहते हैं। दोनों पक्षों में जब विवाह तय हो जाता है तो उसे "पक्की पोढ़ी" कहते हैं। पहाड़ से ब्राह्मणों के अवागमन से पूर्व किसी भी संस्कार या पूजा में ब्राह्मणों की जरूरत नहीं थी। अब अधिकांश थारू ब्राह्मणों के अनुसार संस्कार करने लगे हैं। थारूओं के विवाह की औपचारिकता "दिखनौरी" (सगाई) से शुरू होती है। पहले यह बचपन में तथा गर्भावस्था में भी हो जाती थी। यह औपचारिकता सयाना या किसी भी सम्मानित मस्पतिया द्वारा रिश्ता पक्का कराने पर लड़की वाले लड़के के घर जाकर पूरी करते हैं। उसके बाद चूल्हा बैठा होता है, जिसमें दोनों पक्षों की लकड़ियां अपने-अपने यहां पवित्र स्थान की मिट्टी तथा भूसे से चूल्हा बनाती हैं। विवाह से एक दिन पूर्व भूमसेन की पूजा होती है। भूमसेन गांव का देवता होता है। उसके बाद बारात और विवाह के कार्यक्रम होते हैं। अब बैण्ड बाजों का रिवाज आ गया है, परन्तु कुछ समय पूर्व तक बारात के साथ नौटंकी की व्यवस्था होती थी जिस दिन दूल्हा अपनी दुल्हन को विदाई के बाद घर लाता है उस फिर भोज होता है और उस भोज में विशेष रूप से गांव का मुखिया आमंत्रित किया जाता है, जो कि दुल्हन को विदाई के बाद घर लाता है उस दिन फिर भोज होता है और उस भोज में विशेष रूप से गांव का मुखिया आमंत्रित किया जाता है, जो कि दुल्हन को उस घर की तथा गांव की बहू के रूप में मान्यता देता है। थारू जनजाति में बाल-विवाह की प्रथा रही है। बताते हैं कि मुगल आतताइयों से कन्याओं की रक्षा की खातिर इस समुदाय में बाल-विवाह की कुप्रथा ने जन्म ले लिया था। दूल्हे की उम्र सामान्यतः 13 वर्ष और दुल्हन की 11 वर्ष तक होती है। थारूओं में विवाह संस्कार प्रचलित परम्परागत रीतियों के साथ सम्पन्न किया जाता है। इसमें "चूल्हा बैठाण", "भूमिया पूजन", "सर देना", "तेल चढ़ाना", "पहनावा", "भौंणी", "कन्यादान", "भंवर" आदि प्रमुख रस्में हैं। विवाह के बाद दुल्हन को वर पक्ष के साथ विदा किया जाता है। लेकिन ससुराल में मात्र एक या दो दिन ठहरने के बाद कन्या पुनः पिता के घर आ जाती है और गौना की रस्म के बाद ही वह स्थाई रूप से ससुराल जाती है। उत्तराखण्ड की अन्य जातियों में गौना प्रथा नहीं है। इसके

अलावा विधवा विवाह, जिसमें “चुटकटा” तथा “उठाण” विवाह प्रमुख हैं, का प्रचलन भी थारू समाज में काफी है। “चुटकटा” विधवा पुनर्विवाह में विधवा अपने दूसरे पति को स्वयं अपने ही घर पर (याने कि पूर्व पति के घर) रख लेती है, इस प्रकार के पति की चुटिया को काट दिया जाता है। इस प्रथा का प्रचलन इसलिये हुआ है कि विधवा के पूर्व पति की चल एवं अचल सम्पत्ति खण्डित न होने पाये और उसकी विधवा उस सम्पत्ति को लेकर कहीं खण्डित न होने पाये और उसकी विधवा उस सम्पत्ति को लेकर कहीं अन्यत्र न जा सके। “उठाण” प्रथा में विधवा से विवाह करने का इच्छुक व्यक्ति पारस्परिक सहमति से उसे अपने घर ले प्रकार के विवाह में विवाह के इच्छुक पुरुष को मुआवजे के रूप में कुछ धन विधवा के ससुरालियों को देना पड़ता है। इसके अलावा भी कुछ अधिमान्य विवाहों की प्रथाओं का प्रचलन थारू समुदाय में देखने को मिलता है। इनमें पति की मृत्यु पर देवर से विवाह और पत्नी की मृत्यु के बाद उसकी बहन यानी साली से विवाह शामिल है। सामान्य विवाह के अवसर पर प्रत्येक रस्म की अदायगी के साथ-साथ अपने सभी सगे सम्बन्धियों तथा ग्रामवासियों को आमंत्रित कर भोज दिया जाता है। लड़के के विवाह में “भुइयां रोटी”, “हल्दी रोटी” तथा “कच्ची रोटी” के नाम पर समस्त अतिथियों को भोज दिया जाता है।

● **मृत्यु संस्कार:**

थारूओं का विश्वास है कि मृत्यु के उपरांत आत्मा जहाँ से आयी थी, वहीं चली जाती है। इन लोगों के अनुसार मृत्यु दो प्रकार की मानी गयी हैं। इनमें पहली प्राकृतिक, जो प्रत्येक व्यक्ति को भुगतनी पड़ती है और अप्राकृतिक, जो दुष्ट आत्माओं, देवी-देवताओं के शाप का प्रकोप और बीमारियों के कारण होती है। मृत्यु होने पर परिवार के सदस्य शव को स्नान कराकर उस पर हल्दी का लेप कर उसे नये कपड़े पहना देते हैं। फिर श्मशान में ले जाकर लाश को आधा जला देते हैं, जबकि पहले इसे गाढ़ देते थे। अंत में घर

की शुद्धि कर समाज को भोज दिया जाता है। जब वे मुर्दे को दफना कर लौटते थे तो चौराहे पर एक छोटी सी पुलिया मृतक की आत्मा को संकटों से पार लगाने के लिए बनाते थे (नदीम हसनेन— “जनजातीय भारत”)। थारुओं में अधिकांश खुशी के मौकों पर सामूहिक भोज और शराब का प्रचलन है।

● भोजन:

तराई क्षेत्र के थारुओं का मुख्य भोजन चावल है, क्योंकि यही यहाँ अधिक पैदा किया जाता है। ये लोग चावल को भूनकर या उबालकर खाते हैं। मक्का की रोटी, मूली, गाजर आदि की सब्जी भी खायी जाती है। यहां मछली, दूध, दही तथा दाल भी खायी जाती है। शुष्क ऋतु में ज्वार, चना, मटर आदि भी खाये जाते हैं। ये लोग आलू तथा चावल के बने जैँड को बड़ी रुचि से खाते हैं। हिरन और एण्टिलोप तथा चूहे और कछुए का मांस भी इनके द्वारा खाया जाता रहा है। बन्दर, मगर, सियार, साँप और छिपकली का माँस खाना इनके लिए वर्जित है। ये दिन में तीन बार भोजन करते हैं, जिसे प्रातःकाल में कलेवा, दोपहर में मिंगी और सायंकाल बेरी कहते हैं। चावल की शराब इनका विशेष पेय है और ये खूब शराब पीते भी हैं।

● थारुओं का त्यौहार:

थारु अन्य हिन्दुओं की तरह होली, दीपावली, दशहरा, गंगा स्नान आदि त्यौहारों को बड़े धूमधाम से मनाते हैं। थारुओं में होली एक सांस्कृतिक महोत्सव है, जिसे वे पूरे एक माह आठ दिन तक मनाते हैं। होलिका दहन से पहले जिन्दी होली होती है और फिर बाद में मरी होली। शिवरात्रि से शुरू होने वाली होली, होलिका दहन तक जिन्दी होली के रूप में मनाई जाती है। दहन के ठीक आठ दिन बाद तक मरी होली के रूप में मनाई जाती है। जिन्दी होली में दिन में गाँव के पधान के घर होली गायी जाती है। फिर रात को एक-एक

कर, अपने कुर्मा-टब्लर यानी बिरादरी और अन्य समुदाय तथा उप समुदायों के यहाँ होली गायन होता है। समाज के लोग पधान के घर से उत्तर दिशा से दक्षिण की ओर प्रत्येक घर में जाकर होली खेलते हैं। जिंदी होली में खूब रंग, गुलाल उड़ाया जाता है। गीले-सूखे रंग खूब चलते हैं। लेकिन मरी होली में रंग खेलना अच्छा नहीं माना जाता। महिला-पुरुषों में बराबरी से मनाए जाने वाले इस त्यौहार की शुरुआत गणपति आराधना, शिव पार्वती स्तुति और भरारे बाबा की आराधना के गीत गा कर किया जाता है —

“मेरो गणपति आवे होरी खेलन रे,
मेरो गणपति आवे होरी खेलन रे,

शिव-पारवती को लोड़ो गजपति
आवे होरी खेलन रे

इसके साथ शुरु हुई होली महाभारत के पूरे प्रसंग पर गाई जाती हैं —
कैसो भयो संग्राम भयंकर, कुरुक्षेत्र में
पांडव-कौरव संगे-संगे भईया, जर-जोरु को लड़े रे
ऐसे जैसे लड़े कसइया
कसो भयो संग्राम भयंकर कुरुक्षेत्र में”

थारुओं में रामायण, श्रीमद्भागवत और गीता के प्रसंगों पर भी होली का धमाल होता है। श्रीकृष्ण की बाल लीला से लेकर उनके करतबों और उनकी सभी कलाओं का जिक्र भी होली के माध्यम से किया जाता है। फिर प्रेम रस में डूबी होली शुरु होती है।

थारु होली में ढोल और झाँझ, दो वाद्य यंत्रों का अधिक प्रयोग होता है। दो अर्द्ध वृत्ताकार घेरों में एक तरफ स्त्री और एक तरफ पुरुष खड़े होकर गीत गाते हैं और हाथों में रुमाल लेकर नृत्य करते हैं। रात और दिन दोनों वक्त होली खेली जाती है। पुरुष पहले झगिरा पहनते थे और महिलाएँ घाघरिया। अब पुरुष कुर्ता-पायजामा और महिलाएँ साड़ी पहन कर होली खेलते हैं। छरड़ी के दिन रंग खेला जाता है होलिका दहन में मूँज के झाडू को होलिका की आग में तपाने की परंपरा है, फिर उसे घर पर रखा जाता है। इस दौरान थारु समुदाय के

भरारे डांगर मंत्रोच्चार करते हैं और पूरी रात जागरण होता है। उसी दिन से फिर मरी होली शुरू होती है। मरी होली आठ दिन तक चलती है। ठीक आठवें दिन होलिका दहन की रात को पधान के घर में रखे हुए खखणेरा (जिसे नए घड़े को फोड़कर उसकी मिट्टी के टुकड़ों और अनाज आदि मिला कर बनाया जाता है) को लेकर सुबह चार बजे गाँव की दक्षिण दिशा में पधान और सभी गाँव के लोग उसे डंडों से पीटते हैं। कहीं-कहीं, जहाँ घड़े में इसे ले जाया जाता है वहाँ पधान इसे हल से भी फोड़ता है। इस समय गाँव की किसी भी औरत से कोई भी मजाक कर सकता है, कुछ भी कह देता है तो उसका बुरा नहीं माना जाता। खखणेरा विसर्जित करने के बाद सभी लोग वहाँ से भाग जाते हैं और पीछे मुड़कर नहीं देखते। मान्यता है कि ऐसा करने से दुःख, दर्द, रोग इत्यादि सब कष्ट गाँव छोड़कर भाग जाते हैं। थारू त्यौहार के अवसरों में आमोद-प्रमोद के लिये तैयार होने वाले खानपान पर अत्यधिक खर्च करते हैं। थारू जनजातीय समुदाय आज भी भारतीय संस्कृति के स्वाभिमानी प्रतीक-पुरुष महाराणा प्रताप की जयंती को प्रतिवर्ष बड़े ही धूमधाम से मनाता है। थारू लोगों को गर्व है कि वे महाराणा प्रताप की सेना के सैनिकों के वंशज हैं।

● सामाजिक संगठन:

बड़े परिवार को व्यवस्थित ढंग से चलाने के लिए परिवार का एक योग्यतम पुरुष "गन्धूर" या "मालिकर" चुना जाता है। इसके लिए उस पुरुष का सबसे बुजुर्ग होना जरूरी नहीं है। इसी प्रकार परिवार की महिलाओं में से एक "गन्धूरेण" या मालकिन चुनी जाती है। इस मालकिन की भी उम्र या रिश्ते में सबसे बड़ी होने की अनिवार्यता नहीं, बल्कि उसकी बुद्धिचातुर्य, परिपक्वता एवं जिम्मेदारियों का निर्वाह कर सकने की क्षमता परखी जाती है। यह भी जरूरी नहीं कि गन्धूरेण परिवार के बन्धूर की ही पत्नी हो। वह परिवार की महिला शक्ति का परिवार के संसाधनों के प्रबन्धन में उपयोग करती है। पुरुष

वर्ग में गन्धूर या गन्धूरिया के मातहत एक अघारिया होता है जो कि कामगार इकाइयों का मुखिया होता है। परिवार के शेष सदस्य "कमाणिया" घर में हल जोतना, पशु चराना तथा छकड़ा गाड़ी चलाने का कार्य करते हैं जबकि विशेषज्ञ कार्य अनुभवी लोगों को ही सौंपे जाते हैं। लेकिन इसका मतलब यह नहीं कि बाकी समय में ये खाली बैठे रहें। दरअसल इन्हें जरूरत के वक्त पर ही ये खास कार्य दिये जाते हैं तथा शेष समय में वे आघारिया के निर्देश पर अपना कार्य करते हैं।

महिला शक्ति का प्रबंधन गन्धूरेण करती है। वह परिवार में महिला शक्ति का नेतृत्व करती है। वह खाना पकाने के लिए, "भन्साहेरी" की नियुक्ति करती है। इसके अलावा वह, "बजगुड़िया" भी तैनात करती है, जिसका काम घर के अन्दर से लेकर खेतों तक फैला होता है। प्रत्येक महिला को निर्धारित समयावधि में "भन्साहेरी" के रूप में तीन माह तक किचन में खाना पकाने का कार्य करना होता है। हल केवल पुरुष चलाते हैं। बाकी काम महिला पुरुष मिलकर करते हैं। वन्य जीवों का आखेट पुरुष करते हैं जबकि मछली मारने का काम प्रायः महिलाएं करती हैं।

थारुओं की तीन शाखाएँ और 26 उपशाखाएँ हैं (क्रुक 1885)। उन पर शाखाओं या उप जातियों का नामकरण क्षेत्र विशेष के नाम पर भी हुआ है। जैसे डांग के डांगवारिया, चितवाल के चितवानिया एवं नवलपुर के थारुओं को नवलपुरिया कहते हैं। प्रत्येक उपजाति समूह कई "कुरी" या "गोटियाल" से बना होता है। एक गोटियाल में कई पट्टीदार होते हैं। प्रत्येक पट्टीदार की इकाइयां घर, परिवार या कुल होते हैं। गोटियाल का प्रतिनिधित्व एक विशेष वृक्ष करता है। जिसे गोटियाल के प्रत्येक परिवार अपनी पहचान के लिए घर के आंगन में लगाते हैं। थारु समाज भी दो हिस्सों में विभक्त है। एक हिस्सा स्वयं को सिसौदिया राणा ठाकुर मानता है जबकि दूसरे हिस्से को ठाकू कहा जाता है। थारुओं में राणा ठाकुर तथा गडोरा ठाकुर उच्च कुल के माने जाते हैं। बाकी गिन्नामा जुगिया धंगरा तथा खुनका मध्यम वर्ग के और सौंसा को निम्न वर्ग का माना जाता है। थारुओं की एक बोकसा उपभाषा

भी है। मानव विज्ञानियों के अनुसार बोक्सा की मूल जाति थारू ही है, जिन्हें थारू समाज से टोना-मोना या काले जादू का उपयोग करने के कारण अलग किया गया था। बाद में बोक्सा के साथ हिमालय क अन्य तंत्र-मंत्र वाली जातियां मिलकर विलीन हो गईं। थारूओं में तंत्र-मंत्र या देवी देवताओं की पूजा करने वाला भरारे या गुरुवा होता है। पूर्व में वही ब्राह्मण का कार्य करता था।

● अन्धविश्वास और आस्था:

दलदली, मलेरिया प्रभावित और घने जंगलों से घिरी जमीन खूंखार जंगली जानवरों की मौजूदगी तथा एकांत बस्तियां आदि ऐसे कारण हैं, जिन्होंने संभवतः थारूओं को अन्ध-विश्वासी और अदृश्य शक्तियों में विश्वास करने वाला बनाया। वे कदम-कदम पर किसी न किसी देवता की पूजा करते हैं। उनमें बोक्सा-बोक्सिन का बहुत भय समाया रहता है। वे वनों को भूत-प्रतों से भरा हुआ मानते हैं। इसीलिए वे शाम को या रात को जंगलों में जानवरों अधिक भूत-प्रतों से डरते हैं। उनमें अवसर विशेष पर देवता विशेष की पूजा का रिवाज है। थारू आमतौर पर शिव, भवानी, शीतला, काली, चण्डी, ढोर चण्डी, बागेश्वरी, शिकारी, चुरैणी आदि की पूजा करते हैं। इनके साथ ही सम्पत्ति की देवी जाखिन की पूजा भी होती है। इनके अलावा फसल का देवता जगमाठिया, सांपों से रक्षा करने वाला सम्पेहेरिया, भेड़ियों से बला टालने वाला भण्डुवा, बच्चों का रक्षक अखेडिया, गाय-बैल का रक्षक धमराज, भैंस का रक्षक भैंसापुर, समय का देवता समया और सघर, अग्गर, पांचों पाण्डव, नारायण, बुनिहार या भूमिया, मसाण, वनस्पति माई आदि भी थारूओं के द्वारा पूजे जाते हैं। इनके अलावा भी थारू मंदिरों में सैकड़ों आत्माओं और भूत-पिशाचों के प्रतीक रखे जाते हैं।

थारू गांवों में धीवर मंदिर होता है, जिसमें गांव के देवता रखे जाते हैं। वह गांव के उत्तर में होता है। पितर देवता को घर के

अन्दर स्थापित किया जाता है, जबकि धमराज तथा भैंसापुर को गोशाला के अन्दर रखा जाता है। ढोर चण्डी (पशु रक्षक) को गांव के निकट रास्ते में रखा जाता है। वनस्पति माई को जंगल में रखा जाता है। थारुओं का विश्वास है कि गांव का दहीत पद देवता गांव की लड़कियों के साथ उनके ससुराल जाता है और वहां उनकी रक्षा करता है। पूजा के समय बकरा, मुर्गा या सुअर की बलि चढ़ा कर उनके रक्त को देवताओं के प्रतीक खम्बों पर लगाया जाता है तथा मांस को प्रसाद मान कर आपस में बांटा जाता है। थारुओं की पूजा "गुरुवा" या भरारे के माध्यम से होती है। उसे समाज में विशेष स्थान प्राप्त है। पूजा मंत्र-तंत्र से होती है। इनके साल में 4 प्रमुख पूजा पर्व होते हैं -

1. जेठ में धूरिया
2. भादों के सोमवार को हरारी पूजा
3. अश्वनि में दशहरा पूजा
4. अगहन के माह धान काटने से पूर्व लेवांगी की पूजा

● परंपरागत संगठन एवं न्याय व्यवस्था:

संविधान के 73वें संशोधन के बाद स्थापित त्रिस्तरीय पंचायती राज व्यवस्था थारु गांवों में भी स्थापित हो गई है, परन्तु यह नई व्यवस्था परंपरागत बिरादरी पंचायत के प्रभाव को पूरी तरह समाप्त नहीं कर पाई है। मिश्रित आबादी के गांवों में नई पंचायती राज व्यवस्था का बोलबाला है, परन्तु बिरादरी के मामलों में पधान या मुखिया तथा पंचों की ही चलती है। थारु जनजाति में समाज के वयोवृद्ध व्यक्ति को ही मुखिया बनाने की परंपरा रही है। गाँव का मुखिया ही झगड़ों का निपटारा और विवाह आदि मामलों का निर्णय लेता है। सामाजिक एवं सांस्कृतिक विवाद आज भी बिरादरी की पंचायतों में चलते हैं और वहां पंचों के विवेक और आपसी समझदारी से वे विवाद निपटा लिए जाते हैं। उनके झगड़े प्रायः पुलिस या न्याय पंचायत के पास नहीं जाते। ये बिरादरी पंचायतें उनकी

संस्कृति और परिस्थितियों के अनुरूप बनीं है तथा इनसे लोगों की भावनाएं जुड़ी हुई हैं।

समाज को मर्यादित करने तथा शांति व्यवस्था बनाये रखने के लिए थारुओं की भी बिरादरी पंचायत होती है। इस पंचायत के प्रमुख को मुखिया, मधास्त या महतो कहा जाता है। वह पंचों में से चुना जाता है। मुखिया के लिए उम्र, अनुभव, निष्पक्षता तथा न्याय के प्रति आदर भाव आदि आवश्यक गुण माने गये हैं। मधास्त जन्म के आधार पर नहीं बल्कि योग्यता के आधार पर चुना जाता है। मधास्त की सहायता के लिए “बदधर” को चुना जाता है। प्रत्येक घर का मुखिया (मन्धूर) बिरादरी पंचायत का सदस्य होता है। पंचायत की कार्यवाहियां मौखिक होती हैं, परन्तु ये सभी को मान्य होती है। पंचायत को दोषी को आर्थिक या शारीरिक दण्ड देने का अधिकार भी होता है। “मद्यप पंचगण” मदिरा के घूंट के साथ तर्क-वितर्क करते हैं। इस प्रकार न्याय में भी मदिरा की प्रमुख भूमिका रही है। “वाद” की विभिन्न धाराओं पर प्रश्नों की झड़ी लग जाती है। निर्णय में नीर-क्षीण का विवेक दिखाई पड़ता है। पराजित पक्ष को शारीरिक और आर्थिक दण्ड सहना पड़ता है। इन निर्णयों के लिए कहीं भी अपील की गुंजाइश नहीं है। लेकिन अब इस प्राचीन न्याय व्यवस्था में भी पक्षपात का खोट आने लगा है और इसीलिए अब विवाद के मामले अदालतों में भी जाने लगे हैं। यह व्यवस्था आज इसलिए भी महत्व खोने लगी है, क्योंकि थारु गांवों में बाहरी लोग घुस गए हैं तथा वे प्रभावशाली भी हैं। विभिन्न जातियों की मौजूदगी में एक जाति की पंचायत का महत्व घटना स्वाभाविक ही है। इसके साथ ही आर्थिक और कानूनी अधिकार सम्पन्न नई पंचायतें परंपरागत पंचायतों के औचित्य के लिए चुनौती बन गई है।

● पंचायत का न्याय क्षेत्र:

बिरादरी पंचायत को एक व्यापक दायरे के विषयों में निर्णय लेने का अधिकार है। उनमें तलाक, सगाई

तोड़ना, फसल सुरक्षा, नुकसान पहुंचाने पर टोना-मोना करना, तलाक एवं थारू समाज से जुड़े अन्य मामले आते हैं। पूर्व में हत्या जैसे जघन्य मामले तक बिरादरी पंचायतों में आते थे लेकिन अब समय परिवर्तन के साथ ही ये सारे मामले पुलिस और अदालतों तक जाने लगे हैं।

● भूमि पुत्रों की भूमि का खिसकना:

थारू जब इस विकट परिस्थिति वाले भूभाग में आये होंगे तो वह भूमि "नो मेन्स लैंड", यानी कि लावारिस जमीन थी। इन विकट परिस्थितियों के कारण वहां कोई बसना तो रहा दूर, घुसना भी नहीं चाहता था। इसलिए थारू जहां पर चाहे खेती कर लेते थे तथा कुछ समय के बाद उस भूमि को छोड़कर अन्यत्र कहीं जंगल साफ कर खेती करने लगते थे। देखा जाए तो यही प्राचीन निवासी तराई के असली मालिक हैं। अगर उन्हें तब उस जमीन के महत्व का पता होता तो वे विशाल भूखण्डों पर कब्जा कर हजारों एकड़ उपजाऊ जमीन के मालिक होते और आज पूर्वी तथा पश्चिमी पाकिस्तान से आये शरणार्थियों और पंजाब से आये हुए लोगों की तरह समृद्धि उनके कदम चूम रही होती। अन्धविश्वास, सुस्त, नशे के आदी और विवाह समारोह आदि में फिजूलखर्ची करने वाले उत्तराखण्ड के सोना उगलने वाले क्षेत्र के मूल निवासी आज उस क्षेत्र के सबसे गरीब लोगों में गिने जाते हैं। इन्होंने अधिक से अधिक खाली जमीन को आबाद कर उसका भूस्वामी बनने के बजाय अपने पास की अधिकांश जमीन भी बाहरी लोगों के हाथों गंवा दी।

थारू राणा परिषद के अध्यक्ष एवं पूर्व विधायक गोपाल सिंह राणा के अनुसार खटीमा नगर की भूमि थारूओं की थी। परन्तु उस व्यावसायिक नगर में 10 प्रतिशत भी थारू व्यवसायी नहीं है। लगभग एक तिहाई थारू अपनी जमीनों को पंजाबियों को बेचकर भूमिहीन हो गये हैं। बाहरी लोग डरा-धमका कर भी थारूओं की जमीनें हड़प रहे हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में बाहरी सम्पन्न लोगों ने जंगलराज कायम कर रखा

है। इनके आतंक के कारण थारू शोषण के खिलाफ आवाज नहीं उठा पाते। यहां तक कि प्रायः शासन और प्रशासन भी इनकी मदद के लिए आगे नहीं आता। तहसीलदार और ग्राम सेवकों की भी किसी सम्पन्न बाहरी किसान के खिलाफ शिकायत की जांच करने की हिम्मत नहीं होती। जमींदारी विनाश एवं भूमि व्यवस्था अधिनियम 1950 की धारा 211 के अन्तर्गत एस0डी0एम0 को एक साधारण अर्जी पर जनजाति की जमीन पर कब्जा हटाने का अधिकार है। परन्तु आज तक तराई के किसी एस0डी0एम0 ने ऐसा कोई उदाहरण पेश नहीं किया। पूर्व विधायक गोपाल सिंह राणा बताते हैं कि सन् 1981 में एक बार खटीमा ब्लॉक के गुड़खाड़ा गांव में तुलाराम थारू की जमीन से कब्जा हटाने तत्कालीन एस0डी0एम0 पद सिंह गए तो उन्हें वहां से जान बचाकर भागना पड़ा। इसी प्रकार तहसीलदार को भगाने की नयी घटनाएं भी सामने आयी हैं। खटीमा के फुलैया गांव में दबंगों द्वारा नवम्बर 2011 में थारू जनजाति के लोगों पर जानलेवा हमले की वारदात दमन और शोषण की एक जीती-जागती मिसाल है। दरअसल फुलैया गांव के करन सिंह, बनवारी सिंह और केदार सिंह का गांव में 102 बीघा भूमि पर दबंगों द्वारा कब्जे को लेकर विवाद चल रहा था। घटना के दिन भूमि पर कब्जा करने की नीयत से लाठी-डंडों एवं अन्य हथियारों से लैस होकर एक पक्ष के लोग चार-पांच ट्रेक्टरों से खेत जोत रहे थे। थारू विजय बहादुर, भरत सिंह, ओमकार सिंह ने परिजनों के साथ दबंगों का विरोध किया, तो खेत जोत रहे लोगों ने उन पर गोलियां चला दीं तथा तलवारों और लाठी-डंडों से हमला कर दिया। इस गोलीबारी में 35 वर्षीय विजय बहादुर और 25 वर्षीय भरत सिंह की मौके पर ही मौत हो गई। एक दर्जन घायलों को सरकारी अस्पताल में भर्ती कराया गया।

● जमीन हड़पने की शिकायत:

जनजातियों की जमीनों किस कदर लूटखसोट मची हुई है, इसकी दासतां वर्ष 2011 में खटीमा के विधायक गोपाल सिंह राणा के नेतृत्व में थारू और बोक्सा जनजातियों के एक शिष्टमण्डल ने तत्कालीन मुख्यमंत्री रमेश पोखरियाल "निशंक" से भेंट कर बयां की। थारू और बोक्सा जनजाति मंच के बैनर तले इन नेताओं ने मुख्यमंत्री को अवगत कराया कि जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार अधिनियम की धाराओं के प्रावधानों के अनुसार जनजातियों की जमीनें कोई भी नहीं खरीद सकता है, लेकिन नैनीताल और ऊधमसिंहनगर जिलों में निवास करने वाली इन जनजातियों की जमीनें बाहरी लोगों ने हड़प ली हैं और तराई के मूल निवासी भूमिहीन हो कर अपनी ही जमीन पर मजदूरी करने को विवश हैं। इनक कार्यकताओं ने मुख्यमंत्री को बताया कि जनजातियों की भूमि की खरीद-फरोख्त तथा स्टाम्प पर होने वाले बिक्रीनामे की प्रक्रिया असंवैधानिक है। इसलिए इस पर तत्काल रोक लगायी जानी चाहिए। उन्होंने भूमि की नीलामी प्रक्रिया में गैर जनजातियों के लोगों की भागीदारी पर पूर्ण रोक लगाने की भी मांग की। उन्होंने यह भी शिकायत की कि तहसील खटीमा, सितारगंज और गदरपुर में स्थानीय प्रशासन द्वारा जनजातियों की भूमिधरी की जमीन को अवैध तरीके से गैर जनजातियों के नाम हस्तांतरित किया जा रहा है। थारू और बोक्सा जनजाति के लोगों की जमीन पर अवैध कब्जा हटाने के लिए 1982 में जमींदारी उन्मूलन अधिनियम में एक विशेष धारा जोड़ी गई थी। इस व्यवस्था के तहत जिला प्रशासन को ऐसे अवैध कब्जे हटाने के लिए स्वयं पहल करनी है। शिष्टमण्डल ने जनजाति बाहुल्य क्षेत्रों में चकबंदी प्रक्रिया शीघ्र शुरू करने तथा ग्राम सभी ऐचता-बिही में थारू जनजाति के 22 परिवारों को मालिकाना हक देने की मांग की। इस तरह की शिकायतों का निदान नहीं है। वास्तविकता यह है कि उत्तराखण्ड में

किसी भी दल की सरकार में कानून का पालन करने और न्याय दिलाने की हिम्मत नहीं है।

● चकबंदी कार्यालय:

80 के दशक में चकबंदी कर जनजातियों को उनकी जमीनों पर उनका कब्जा दिलाने का साहसिक प्रयास जरूर हुआ, लेकिन राजनीतिक मजबूरी के कारण प्रयास धरा रह गया। इस प्रयास का मकसद जनजातियों की जमीनें एक-एक चक में रखकर विकास की गति बढ़ाना भी था। हुआ यूं कि जून 1986 में इस क्षेत्र के लिए चकबंदी शुरू करने का नोटिफिकेशन कर दिया गया। उसी वर्ष किच्छा में चकबंदी अधिकारी कार्यालय स्थापित कर दिया गया। इसमें एक चकबंदी अधिकारी, एक दर्जन पटवारी लेखपाल, कुछ ए0आर0ओ0, लिपिक तथा चपरासी तैनात किये गये। राजस्व विभाग से भूमि सम्बन्धी सारे रिकॉर्ड भी इस कार्यालय को स्थानान्तरित कर दिए गए। खटीमा तथा सितारगंज की बी0डी0सी0 की हर बैठक में यह मामला उठता रहा, मगर जवाब मिलता रहा कि हाईकोर्ट से चकबंदी विरोधियों को स्टे मिला हुआ है। जाहिर है कि अदालत में भी चकबंदी का पक्ष ढंग से नहीं रखा गया, क्योंकि राजनीतिक रूप से भोले-भाले थारू और बोक्सा उतने असरदार नहीं जितने कि जमीनें हड़पने वाले थे। उत्तराखण्ड पर उत्तर-प्रदेश का भूमि हदबंदी कानून जारी रखने के लिए केन्द्र सरकार द्वारा राज्य पुनर्गठन एक्ट में व्यवस्था करना किच्छा के चकबंदी कार्यालय की कहानी की अगली कड़ी है। दरअसल यह चकबंदी कार्यालय इसलिए काम न कर सका क्योंकि रिकॉर्ड में जमीनें जिसके पास थी उसके नाम जमीन का कब्जा नहीं था। इनकी जमीनों को बाहरी लोग हड़प चुके हैं, मगर कानूनी मजबूरी के कारण हड़पी हुई ज्यादातर जमीनें जनजाति के लोगों के नाम पर ही हैं। तीन दशक से भी अधिक समय तक एक इंच जमीन की भी चकबन्दी न कर सकने के बाद अन्ततः उत्तराखण्ड राज्य के अस्तित्व में आने पर राज्य सरकार ने वह कार्यालय ही सदा के लिये बन्द कर दिया। अब जमीनें हड़पने वालों

ने जमीनों की कुड़की जैसे नये फण्डे ढूँढ लिये हैं। जनजाति के लोगों को सरकारी ऋण के लिये उकसाया जाता है और जब वे ऋण अदा नहीं कर पाते तो उनकी जमीन नीलाम या कुर्क करा दी जाती है। इस प्रक्रिया में खुले आम मिलीभगत चलती है। अगर तराई में चकबन्दी हो जाए तो जमीनों के महाघोटाले का पर्दाफाश हो जायेगा। जनजातियों की जमीनों की खरीद पर प्रतिबन्ध होने के कारण भले ही जमीनें दबंगों ने कब्जा ली हों मगर ज्यादातर जमीनें रेवेन्यू रिकॉर्ड में अभी भी जनजातियों के ही पास हैं।

● पंचायती राज की कहानी थारुओं की जुबानी:

भारतीय

संसद ने प्राचीन पंचायत व्यवस्था से प्रेरणा लेते हुए विकास कार्यों के लिए सत्ता की पहुँच सीधे गांव तक तथा गांव की पहुँच सीधे सत्ता तक स्थापित करने तथा लोकतंत्र को इसके बुनियादी स्तर गांव में मजबूत करने के लिए संविधान में 73वां संसोधन कर त्रिस्तरीय पंचायती राज व्यवस्था का गठन किया। कानून निर्माताओं को आशा थी कि इस व्यवस्था के तहत देश के विभिन्न जातीय समूहों की लोकतांत्रिक सत्ता में सीधी भागीदारी सुनिश्चित होगी तथा स्थानीय समुदाय गांव स्तर पर अपने चहुमुखी विकास के लिए अपने हजारों सालों के परंपरागत ज्ञान से विकास योजनाएं बनायेंगे, लेकिन थारुओं के मामले में पंचायती राज की यह सोच विफल साबित हो रही है। ये लोग नई और पुरानी पंचायती व्यवस्था के बीच झूल रहे हैं। दरअसल, सब कुछ हड़पने की हवस से ग्रस्त बाहरी लोग थारुओं को संविधान से प्रदत्त पंचायती राज की ग्रामीण सत्ता को भी हड़पने से बाज नहीं आये। आज स्थिति यह है कि नवीन पंचायती राज के तहत गैर थारु लोग ग्राम पंचायतों के प्रधान बन बैठे हैं। वह इसलिए हुआ कि थारु सीधे-सादे लोग होते हैं तथा उन्हें आधुनिक राजनीतिक कलाबाजियों को ज्ञान नहीं रहा। शराब के तो वे शौकीन होते ही हैं, इसका फायदा बाहरी लोगों ने उठाया। वे पंचायत

चुनाव के दौरान थारुओं को आपस में लड़ते हैं और शराब का भी उपयोग कर खुद उनके गांव के प्रधान बन जाते हैं।

चम्पावत जिले के गठन के बाद खटीमा ब्लाक की 10 पंचायतें नए जिले में चली गई थी। वहां अब 41 ग्राम पंचायतें पह गई हैं और इनमें से 36 ग्राम सभाएं थारुओं के बहुमत वाली हैं। राज्य गठन के बाद हुए दूसरे पंचायत चुनाव में इन 36 ग्राम सभाओं में से 13 ग्राम सभाओं में बाहरी लोग ग्राम प्रधान बन गये थे। इन ग्राम सभाओं में बंडिया, भैंसहा, बरी, अंजनिया, चंदेरी (अ0 जा0), खेतल सन्डाराम, नगला तराई, भूड, उमरू खुर्द, कुटरी, नागपानाथ, सिरपुर बिचवा, प्रतापपुर एवं सड़ासड़िया शामिल थीं। नैनीताल जिले के सितारगंज ब्लॉक में नानकमत्ता बलखेड़ा, सरौजा एवं मलपुरी ग्राम सभाएं थारुओं के बाहुल्य वाली हैं, परन्तु इनमें गैर थारु ग्राम प्रधान चुने जाते रहे हैं। इस ब्लॉक में कुल 31 ग्राम सभाएं हैं। गैर थारु बाहुल्य ग्राम सभाओं में तो थारुओं का प्रधान बनने का प्रश्न नहीं उठता है। सम्पूर्ण ऊधमसिंहनगर के तराई क्षेत्र में थारु और बोक्सा की जनसंख्या 1991 की जनगणना के अनुसार 86,327 थी।

बांध और थारु:

बांध किसानों की खुशहाली के लिए ही बनाए जाते हैं। नानकसागर भी किसानों की खुशहाली के लिए ही बनाया गया था। खुशहाली आयी जरूर, मगर उत्तराखण्ड में नहीं बल्कि उत्तर-प्रदेश क पीलीभीत, रामपुर, बरेली आदि इलाकों में। खुशहाली बाहर से आये हुए मछली ठेकेदारों के लिए भी आयी। इस बांध ने बाहर से आकर यहां बसने वाले काश्तकारों के लिए उन्नति के नये द्वार खोल दिए, मगर साथ ही बांध ने कई गांवों के थारुओं की किस्तत को भी डुबो दिया। इस बांध ने भड़ाभूड़िया, अस्ताभी, बिसौटा और फूलइया के थारुओं की लगभग 2000 एकड़ जमीन को दलदली बनाकर बर्बाद कर दिया। भूमि होते हुए भी ये थारु भूमिहीन हो गये। भूमि के एवज में इन्हें बांध से

मछली पकड़ने का काम दे दिया जाता तो भी इनकी समस्या हल होती, मगर इस ओर ध्यान देने की जरूरत ही नहीं समझी गई।

विकास और थारू:

जनजातियों के हितों के संरक्षण के लिये भारत ने संविधान के प्रावधानों के अन्तर्गत 1967 में उत्तर-प्रदेश की 4 अन्य जातियों के साथ ही थारू को अनुसूचित जनजाति घोषित किया था। इसके बाद जनजातियों के आर्थिक, सामाजिक एवं शैक्षणिक पिछड़ेपन को दूर करने के लिए लखनऊ में एक पृथक जनजाति विकास निदेशालय की स्थापना की गई। चूंकि इस निदेशालय को धन सीधे भारत सरकार से मिलता था, इसलिए निदेशालय द्वारा कुछ जनजाति क्षेत्रों में एकीकृत जनजाति विकास परियोजनाएं 1983 में शुरू की गई। इसी तरह की एक परियोजना खटीमा तथा सितारगंज के 132 थारू गांवों के लिए शुरू की गई। इस परियोजना के तहत थारूओं को डनलप कार्टर्स बैलों की जोड़ी सहित, मत्स्य पालन, दुधारू पशुओं का वितरण, स्टेट ट्यूबवेल, डीजल पंप सेट, निटिंग मशीन, रिक्शा, महिला एवं शिशु कल्याण केन्द्र की स्थापना, ट्रेनिंग तथा विद्युतीकरण आदि मदों में सरकार ने 1985-86 से लेकर वर्ष 1999-2000 तक कुल 2 करोड़ 29 लाख 94 हजार 500 रुपये खर्च किये। इसके अतिरिक्त उस दौरान सरकार द्वारा परियोजना में कार्यरत कर्मचारियों के वेतन भत्ते आदि पर तब से लेकर आलोच्य अवधि तक 1 करोड़ 60 लाख के लगभग धनराशि खर्च की गयी, परन्तु थारूओं के उत्थान की दिशा में आपेक्षित सफलता हासिल नहीं हो सकी है। इसके अलावा सरकार ने तब से लेकर अब तक करोड़ों रुपये तकनीकी प्रशिक्षण संस्थान, आश्रम स्कूलों, छात्रावास आदि पर खर्च कर दिए, लेकिन थारूओं के शैक्षिक स्तर में कोई खास अन्तर नहीं आया।

शिक्षा का स्वप्रयासः

समाज सेवी प्रताप भैया के प्रयासों से सन् 1960 में खटीमा में एक जूनियर हाईस्कूल खुला। उन्हीं के प्रताप से निजी प्रबंधन में इस स्कूल को 1969 में हायर सेकेन्डरी का दर्जा हासिल हुआ। फिर निजी प्रयासों से ही इस स्कूल के थारू इण्टर कॉलेज बन जाने के बाद इसका प्रान्तीयकरण हो गया। आज यह कॉलेज क्षेत्र का जाना-माना कॉलेज है, जिसमें थारूओं के अलावा अन्य जातियों सहित लगभग 5000 छात्र-छात्राएं शिक्षा ग्रहण कर रहे हैं। वास्तव में इस कॉलेज के माध्यम से प्रताप भैया ने थारूओं को शिक्षा की ज्योति दिखाई। शैक्षिक स्तर बढ़ जाने के कारण थारूओं ने अपनी तरक्की के प्रयास स्वयं शुरू किये। आज थारू समाज के 14 से 15 के बीच अधिकांश बच्चे पढ़ रहे हैं।

थारू जनजाति प्राथमिक विद्यालय समिति मुहम्मदपुर-भुड़िया में थारूओं के चन्दे से प्राथमिक तथा जूनियर हाई स्कूल चला रही है। सन् 2000 में उक्त प्राथमिक विद्यालय में 127 बच्चे पढ़ते थे, जिनमें से 108 जनजाति के, 5 अनुसूचित जाति के तथा 14 पिछडत्रे वर्गों के बच्चे थे। इस स्कूल में नौसरा कुटुरा के थारू युवक लक्ष्मण सिंह का कहना था कि बच्चों से 25 रुपये शुल्क लिया जाता है, जिसे सभी लोग खुशी-खुशी दे देते हैं क्योंकि यहाँ बच्चों को अंग्रेजी भी पढ़ाई जाती है। जबकि सरकारी स्कूलों में अंग्रेजी शिक्षा नहीं दी जाती। लक्ष्मण सिंह को स्कूल से 1500 रुपये वेतन मिलता था। क्योंकि वह वहीं का निवासी है तथा उसे खेती-बाड़ी में अपने परिवार के साथ काम करने का पर्याप्त समय मिल जाता था, इसलिए उसे इतना कम वेतन अखरता नहीं था। उसी दौरान थारू समिति वहीं एक जूनियर हाई स्कूल भी चला रही थी, जिसमें 25 जनजाति के तथा 5 अन्य बच्चे थे। खटीमा ब्लॉक में ही सर्वोदय ज्ञान मंदिर देवरी में राणा थारू परिषद कुमरा में राणा थारू कृषक कल्याण समिति नौगवा ठगू में स्कूल चलाती है। स्वैच्छिक तथा बिरादरी के इन संगठनों के स्कूल सरकारी स्कूलों से अच्छे चलते हैं।

थारुओं में धर्म परिवर्तन:

मोहम्मदपुर भुड़िया, जोगीठेर नगला, सहजना, फुलैया, अमाऊं, चांदा, मोहनपुर, गंगापुर, भक्चुरी, भिलय्या, टेडाघाट, नौगवा ठगू, पहनिया, भुड़िया थारु आदि गांवों के कई थारु परिवार धर्म परिवर्तन कर ईसाई बन गए हैं। ये सारे गांव खटीमा विकास खण्ड में हैं। यह क्रम अभी जारी है। कुछ विद्वान इन्हें सीधे गौतम बुद्ध के वंशज मानते हैं, इसलिये कुछ थारु धर्म बदल कर बौद्ध भी बन गये हैं। धर्म बदल कर ईसाई बन चुके लोगों से पूछताछ करने पर पता चला कि जब गांवों में कोई बीमार होता है तो वे उसे झाड़-फूंक और तंत्र-मंत्र के लिए भरारे के पास ले जाते हैं। भरारे की तंत्र-मंत्र विद्या का जब कोई असर नहीं होता है तथा बीमार को पौलीगंज स्थित ईसाइयों के सेण्ट पैट्रिक अस्पताल ले जाते हैं। वहां ईसाइयों का तो मुफ्त इलाज होता है परन्तु गैर ईसाइयों से इलाज का भरपूर शुल्क लिया जाता है। कहते हैं कि मरता क्या नहीं करता ? यह कहावत मजबूर थारुओं पर भी लागू होती है। वे मजबूरी में ईसाई बन जाते हैं, ताकि उनके परिजन की जान तो बच जाए।

खटीमा ब्लॉक के ही जोगीठेर नगला के लक्ष्मण सिंह की पत्नी 1998 में बीमार हुई। शुरू में लक्ष्मण ने तांत्रिकों और देवी-देवताओं के खूब चक्कर लगाये, मगर बीमारी बढ़ती गई। इसी दौरान उसका सम्पर्क पादरी दानसिंह से हुआ जो कि स्वयं पूर्व में थारु था। पादर दानसिंह ने कहा कि धर्म बदलो तो औरत का इलाज हो जाएगा। लक्ष्मण सिंह ने धर्म बदल लिया और फिर पादरी की सिफारिश पर लक्ष्मण सिंह अपनी पत्नी को पौलीगंज स्थित सेण्ट पैट्रिक अस्पताल ले गया। वहां पूरी जांच हुई और पता चला कि रोगिणी को कैंसर है। लक्ष्मण के अनुरोध पर डॉक्टरों ने उसकी पत्नी का ऑपरेशन किया, लेकिन वह फिर भी न बच सकी। कैंसर का इतना महंगा इलाज निःशुल्क हुआ था। अध्ययन के दौरान लक्ष्मण ने मुझे अपने घर पर बताया कि वह पुनः हिन्दू बन गया है, लेकिन उसके घर के अन्दर पवित्र

क्रास का निशान एंव सफेद वस्त्र अब भी मौजूद थे। ईसाई बनने पर उसके भाइयों ने उसका बहिष्कार कर दिया था। जब मैं उस गांव में गया तो घर के आंगन में बाकी भाइयों के संयुक्त परिवार का एक ही चूल्हा जल रहा था। चूंकि पत्नी मर चुकी थी तथा उसे अपने भाइयों के निकट ही रहना था, इसलिए संभव है कि वह उन्हें खुश रखने के लिए पुनः पूर्व धर्म में लौटने की बात कर रहा हो। अपने घर की चहारदीवारी के अन्दर कौन किसकी उपासना या मनन करता है, यह जानना कठिन है। वैसे भी किसी की उपासना में किसी की कोई दखल नहीं होनी चाहिए। परन्तु महत्वपूर्ण सवाल यह है कि अपनी संस्कृति और परंपराओं के प्रति इतने मजबूत लगाव वाले अन्धविश्वासी थारुओं को क्यों धर्म बदलना पड़ रहा है ? प्रायः थारु अपनी आन-बान और शान बढ़ाने के लिए स्वयं को चित्तौड़ के विख्यात स्वाभिमानी राजपूतों का वंशज बताते हैं। आखिर कोई न कोई बात तो अवश्य ही है जो उन्हें अपने अतीत से अलग होने के लिए विवश कर रही है।

उत्तराखण्ड